कारपोरेट पॉलिटिक्स की नई बानगी

प्रेम सिंह

(*यह लेख नवंबर 2013 में लिखा गया था और तभी हिंदी में मासिक पत्रिका 'समयांतर' और अंग्रेजी में 'मेनस्ट्रीम वीकली' में प्रकाशित हुआ था। इस लेख की भारत से लेकर अमेरिका तक के कुछ प्रगतिशील/धर्मनिरपेक्ष बुद्धिजीवियों/स्तंभकारों द्वारा कड़ी आलोचना की गई थी। उनमें से अधिकांश ने लेख को 'कचरा' के रूप में अनदेखा करना बेहतर समझा। तब से युवा भारतीयों की एक पीढ़ी बड़ी हो चुकी है। निश्चित रूप से उसमें बड़ी संख्या में ऐसे युवा हैं जो अभी भी राजनीति को एक विचारधारात्मक/वैचारिक गतिविधि के रूप में देखते हैं। लेख को युवाओं के पढ़ने और देश में राजनीति की वर्तमान दशा को समझने के लिए यथावत रूप में फिर से जारी किया गया है।*)

देशी-विदेशी कारपोरेट घरानों की हित-पोषक अर्थव्यवस्था स्थायी रूप से तभी चल सकती है, जब राजनीति भी कारपोरेट घरानों की हित-पोषक बन जाए। नब्बे के दशक के शुरू में नई आर्थिक नीतियां लागू किए जाने के बाद से भारत की मुख्यधारा राजनीति का चरित्र कमोबेश कारपोरेट-सेवी बनता गया है। कारपोरेट पूंजीवाद के अलावा कोई अन्य विचारधारा और सिद्धांत वहां काम करते नजर नहीं आते। अलबत्ता, कारपोरेट पूंजीवाद की विचारधारा सांप्रदायिकता, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, वंशवाद, परिवारवाद, व्यक्तिवाद आदि को अपने आगोश में लेकर जीवन के हर क्षेत्र और तबके में तेजी से घुसपैठ बनाती जा रही है। बड़ी पूंजी और बड़ी टेक्नोलाजी से चलने वाला मीडिया इसमें सबसे बड़ी भूमिका निभा रहा है। पहले मिश्रित अर्थव्यवस्था और पिछले करीब 25 सालों में नवउदारवादी आर्थिक नीतियों का लाभ उठाने वाला ज्यादातर मध्यवर्ग, जिसे आजकल नागरिक समाज कहा जाता है, और जिसके एक्टिविज्म की खासी चर्चा होती है, कारपोरेट पूंजीवाद का समर्थक बन गया है। ऐसे में, संविधान में प्रस्थापित लोकतंत्र, समाजवाद और धर्मनिरपेक्षता के मूल्यों पर आधारित संविधान की विचारधारा भारत की राजनीति का निर्देश-बिंदु नहीं रह गई है। वह विश्व बैंक, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व व्यापार संगठन और उनके ऊपर अमेरिकी सत्ता प्रतिष्ठान के निर्देशों का पालन करती है। यह कारपोरेट पालिटिक्स का दौर है, आम आदमी पार्टी (आप) के रूप में जिसकी एक नई बानगी सामने आई है।

आम आदमी पार्टी मुख्यधारा मीडिया में काफी छाई रहती है। लेकिन इसके चरित्र को लेकर गंभीर विश्लेषण, जो लघु पत्रिकाओं में ही संभव है, देखने में नहीं आता। हमने 'युवा संवाद' के अपने मासिक कालम 'समय संवाद' में इस पार्टी के चरित्र की कुछ पड़ताल की है। यह लेख उसी कड़ी में लिखा गया है। इस विषय पर लिखे गए पहले के लेखों की तरह यह हिंदी अथवा अंग्रेजी के किसी अखबार में प्रकाशित नहीं हो सकता था। अंग्रेजी के 'दि हिंदू' और हिंदी के 'जनसत्ता' मुख्यधारा मीडिया में कुछ अलग पहचान वाले अखबार हैं। लेकिन आम आदमी पार्टी के समर्थन में वे सबसे आगे नजर आते हैं। मुख्यधारा मीडिया के साथ आम आदमी पार्टी की गहरी यारी का कारण यही है कि दोनों का घराना - कारपोरेट पूंजीवाद - एक है।

आम आदमी पार्टी बनाने और चलाने वाले इंडिया अंगेस्ट करप्शन (आईएसी) के नाम से बनी टीम के प्रमुख नेता थे। आईएसी में सांप्रदायिक, प्रतिक्रियावादी, यथास्थितिवादी, स्त्री-विरोधी, धर्म व अध्यात्म का धंधा करने, अंधविश्वास फैलाने और एनजीओ चलाने वालों की खासी तादाद थी। विश्व बैंक से पुरस्कार प्राप्त अन्ना हजारे इस टीम के प्रमुख बनाए गए, जिन्होंने अपने गांव को एनजीओ की मार्फत 'स्वर्ग' बना दिया था। उन्हें प्रमुख बनाने वाले अरविंद केजरीवाल भारत से राजनीतिक एक्टिविज्म को खत्म करने वाले प्रमुख एनजीओ सरगनाओं में से एक थे। दोनों में जो अंतर दिखाई देता है, वह इसलिए कि अन्ना हजारे 70 के दशक की उपज हैं और केजरीवाल सीधे नवउदारवादी दौर की संतान हैं। आईएसी के तत्वावधान में शुरू हुए भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के संचालन में आरएसएस ने और फैलाने में मुख्यधारा मीडिया ने केंद्रीय भूमिका निभाई। भारत के सभी कारपोरेट घराने और उनकी संस्थाएं उसके पूर्ण समर्थन में थीं। इस आंदोलन के कर्ताओं के लिए भ्रष्टाचार ऐसी ताली है जो एक हाथ से बजती है; जिसमें नेताओं को घूस देकर राष्ट्र की संपत्ति को लूटने वाले कारपोरेट घरानों और कारपोरेट पूंजीवाद के सेफ्टी वाल्व एनजीओ को सच्चा सदाचारी माना जाता है। 'भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन की राख से पैदा' हुई आम आदमी पार्टी का चरित्र आईएसी और भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के चरित्र से अलग नहीं हो सकता। अतः उसे भारत में पिछले 25 सालों से बन रही कारपोरेट पालिटिक्स की एक नई बानगी के रूप में देखा जाना चाहिए।

नवउदारवाद की शुरूआत के साथ उसका प्रतिरोध भी शुरू हो गया था। नवउदारवाद के बरक्स वैकल्पिक राजनीति के निर्माण की भी शुरूआत हो गई थी। भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन और आम आदमी पार्टी ने वैकल्पिक राजनीति के प्रयासों को भारी नुकसान पहुंचाया है। इस मायने में वह मुख्यधारा राजनीतिक पार्टियों से ज्यादा खतरनाक है। नवउदारवाद की अनुगामी मुख्यधारा राजनीति वैकल्पिक राजनीति को परास्त कर देती है। लेकिन इस पार्टी ने नवउदारवाद के विकल्प की राजनीति को खत्म करने का बीड़ा उठाया हुआ है। उसने सबसे गहरी चोट वैकल्पिक

राजनीति की किशन पटनायक द्वारा प्रवर्तित धारा को दी है। इस बार, अपने को किशन पटनायक की धारा का समाजवादी कहने वालों ने विरासत के प्रति द्रोह किया है। लोकतांत्रिक प्रगतिशील खेमे से केवल कुछ समाजवादी ही इस पार्टी के स्थापनाकार और पैरोकार बने हैं।

थोड़ा पीछे लौटें तो पाएंगे कि इस पार्टी के प्रमुख लोगों में कुछ कांग्रेस और कुछ भाजपा-आरएसएस का काम करते थे। नवउदारवाद और कारपोरेट घरानों से ऐसे लोगों का कोई विरोध हो ही नहीं सकता। एक सूत्र में कहें तो 'आम आदमी पार्टी के नेता कांग्रेस के मौसेरे, भाजपा के चचेरे और कारपोरेट के सगे भाई हैं।' कांग्रेस का काम करने वालों के बीच सोनिया गांधी की अध्यक्षता वाली राष्ट्रीय सलाहकार समिति (नैक) में जगह पाने की प्रतिस्पद्र्धा चलती रहती है। जानकार बताते हैं कि केजरीवाल को नैक में और प्रशांत भूषण को केबिनेट में ससम्मान रख लिया जाता तो यह सब बखेड़ा खड़ा नहीं होता। शांति भूषण कांग्रेस की इस 'नाइंसाफी' को लेकर खासे आक्रोश में रहते थे कि चिदंबरम, सिबल, सिंघवी जैसे वकीलों को बड़े ओहदे देने वाली कांग्रेस ने उनके बड़े वकील बेटे को बाहर रखा हुआ है। जब से आम आदमी पार्टी बनी है, वे चर-अचर से कहते पाए जाते हैं कि पहले दिल्ली और 2014 में देश फतह कर लिया जाएगा! यानी कांग्रेस से उनकी अनदेखी करने का बदला ले लिया जाएगा।

आज तक देश में जितनी राजनीतिक पार्टियां बनी हैं, उनमें किसी का भी एकमात्र लक्ष्य आम आदमी पार्टी की तरह तत्काल और येन-केन-प्रकारेण चुनाव लूटना नहीं रहा है। केवल चुनाव लड़ने और जीतने को ही राजनीति मानने वाली पार्टी, असफलता और सफलता दोनों में, मुख्यधारा राजनीतिक पार्टियों से ज्यादा नीचे फिसल सकती है। पिछले दिनों हमें उत्तराखंड के गांव कांडीखाल में युवाओं के लिए आयोजित राष्ट्र सेवा दल के शिविर में जाने का अवसर मिला। वहां आए अंग्रेजी साप्ताहिक 'जनता' के संपादक डा. जीजी पारीख से हमने पूछा कि महाराष्ट्र में जो समाजवादी साथी आप में शामिल हुए हैं उनका उत्साह कैसा है? डा. पारीख ने बताया कि वे सभी दिल्ली विधानसभा के चुनाव पर आंख गड़ाए हुए हैं। अगर दिल्ली में आप की सरकार बन जाती है तो वे पार्टी में रहेंगे, अन्यथा कुछ और सोचेंगे। यह बच्चा भी बता सकता है कि दिल्ली में कांग्रेस-भाजपा के अलावा किसी अन्य पार्टी की सरकार नहीं बन सकती। अलबत्ता, दोनों को बहुमत में कुछ सीटें कम पड़ जाएं और आप को कांग्रेस-भाजपा के नक्षेकदम पर चलते हुए कुछ सीटें मिल जाएं तो उसके नेता दोनों के साथ जा सकते हैं।

कारपोरेट पालिटिक्स की नई बानगी पेश करने वाली इस पार्टी की कुछ हाल की गतिविधियों पर गौर करें तो उसके चरित्र को अच्छी तरह समझा जा सकता है। भारत की ज्यादातर राजनीतिक पार्टियां मुसलमानों को वोट बैंक मानती हैं। आम आदमी पार्टी के नेताओं की नजर में भी

मुसलमान, भारत के नागरिक नहीं, वोट बैंक हैं। पिछले दिनों मीडिया में खबर थी कि कुछ खास मुसलमानों को आप में शामिल किया गया। वर्तमान दौर में कह सकते हैं, 'मीडिया मेहरबान तो गधा पहलवान'। जैसे मोदी का प्रधानमंत्री के उम्मीदवार के रूप में अवतार मीडिया की देन है (आरएसएस की उतनी नहीं), उसी तरह केजरीवाल भी मीडिया की रचना है। मीडिया आम आदमी पार्टी की खबरें ही नहीं देता, बल्कि उस रूप में देता है जैसा पार्टी का मीडिया प्रकोष्ठ चाहता है। आप के नेताओं ने चाहा कि खबर इस तरह प्रसारित हो कि लोगों में यह संदेश जाए कि देश के सबसे बड़े धार्मिक अल्पसंख्यक समुदाय मुसलमानों में आम आदमी पार्टी की घुसपैठ हो गई है।

यहां 'खास मुसलमान' वाली बात पर भी गौर करने की जरूरत है। राजनीतिक पार्टियां खास मुसलमानों की मार्फत पूरे मुस्लिम समुदाय को वोट बैंक बनाती हैं। खास मुसलमान केवल सेकुलर पार्टियों को ही नहीं, कुछ न कुछ भाजपा को भी उपलब्ध हो जाते हैं। भारत की राजनीति पिछले दो दशकों में अमेरिका-इजरायल की धुरी से बंध गई है, तो उसमें इन खास मुसलमानों की भी खासी भूमिका है। आप में शामिल होने वाले खास मुसलमानों को लगा होगा कि सत्ता में आने पर पार्टी उन्हें बड़े ओहदे देगी। आजकल इसे ही धर्मनिरपेक्षता कहा जाता है।

आप में भाजपा, कांग्रेस, सपा, बसपा जैसी पार्टियों के नेताओं के शामिल होने की खबरें मीडिया में छपती हैं। अभी इन पार्टियों की छंटोड़ (काने-गले होने के चलते ढेर से अलग निकाल दिए जाने वाले फल-सब्जियां) आप में शामिल हो रही है। चुनाव नजदीक आते-आते टिकट न मिलने पर असंतुष्ट होने वाले कुछ स्थापित नेता भी आप में शामिल हो सकते हैं। इस राजनीति की तार्किक परिणति झुग्गियों, पुनर्वास कालोनियों और गांवों में शराब और नोट बांटने में होगी। आप का कांग्रेस-भाजपा को टक्कर देने लायक धनबल चुनाव आने तक बना रहेगा तो शराब व नोट बांटने वाले स्वयं यह काम संभाल लेंगे। विचारधारा और सिद्धांत-विहीन राजनीति की मंजिल सत्ता की अंधी गली के अलावा कुछ नहीं हो सकती।

आजकल आप द्वारा किए जाने वाले खर्च और उसे मिलने वाले धन की खासी चर्चा सुनने को मिलती है। यह भी प्रचारित किया जा रहा है प्रत्येक उम्मीदवार को चुनाव खर्च के लिए पार्टी की ओर से कितने लाख रुपये दिए जाएंगे। तीस-पैंतीस लाख का आंकड़ा बताया जाता है, जो वास्तविकता में एक करोड़ पहुंच ही जाएगा। उम्मीदवारों के लिए यह बहुत बड़ा लालच है। आप द्वारा खेला जाने वाला पैसे का यह खेल आम चुनाव आने तक किस कदर बढ़ जाएगा, इसका अंदाजा अभी से लगाया जा सकता है। आप की अभी तक की राजनीतिक गतिविधियों से यह स्पष्ट हो गया है कि उसके नेता, अन्य मुख्यधारा राजनीतिक पार्टियों की तरह, राजनीति को

सबसे पहले पैसे का खेल मानते हैं। यानी वे गरीब देश में मंहगे चुनावों के हामी हैं, जिन्हें भविष्य में कारपोरेट राजनीति के रास्ते पर और मंहगे होते जाना है।

आप पार्टी के प्रमुख नेताओं को किस स्रोत से कितना विदेशि धन मिलता है, इसका कुछ ब्यौरा भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के दौरान 'समयांतर' में प्रकाशित हुआ था। अब तो काम काफी बढ़ गया है। धन की बाढ़ भी चाहिए। दरअसल, आप नेताओं की अभी तक की कुल योग्यता पैसा बनाने और झींटने की रही है। आगे फोर्ड फाउंडेशन जैसी नवसाम्राज्यवाद की पुरोधा संस्थाओं और कारपोरेट घरानों से ज्यादा से ज्यादा धन झींटने में इस योग्यता का उत्कर्ष देखने को मिलेगा। देश-विदेश के लोग खुद पैसा दे रहे हैं, यह कोई बचाव नहीं है। सब जानते हैं, पैसा ही पैसे को खींचता है।

मुख्यधारा राजनीतिक पार्टियों की तरह आप का भी किसानों, आदिवासियों, दलितों, मजदूरों, कारीगरों, छोटे दुकानदारों/व्यापारियों, छात्रों, बेरोजगारों से सरोकार नहीं है। यह मध्यवर्ग द्वारा मध्यवर्ग की मध्यवर्ग के लिए बनी पार्टी है। ऐसा मध्यवर्ग जो नवसाम्राज्यवादी लूट में हिस्सा पाता है और अपने को नैतिक भी जताना चाहता है। भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन में वह इतने बड़े पैमाने पर यह जताने के लिए कूदा था कि पिछले 25 सालों से जो विस्थापन और आत्महत्याओं का दौर उसकी आंखों के सामने चला, उसमें सहभागिता के बावजूद उसकी नैतिक चेतना मरी नहीं है। मध्यवर्ग द्वारा खड़ा किया गया वह तमाशा इतना जबरदस्त था कि कई जेनुइन विचारक व जनांदोलनकारी भी उसकी चपेट में आ गए।

हाल में आप पार्टी के एक नेता को यूजीसी की समिति से निकाले जाने का प्रकरण मीडिया में काफी चर्चित रहा। भारत में कुकुरमुत्तों की तरह निजी विश्वविद्यालय खुल गए हैं। खुद देश के राष्ट्रपति प्राईवेट विश्वविद्यालयों का विज्ञापन करते हैं। विदेशी विश्वविद्यालयों को लाने की पूरी तैयारी है। भारत के राज्य और केंद्रीय विश्वविद्यालयों को बरबाद करने की मुहिम सरकारों ने छेड़ी हुई है। इसका नवीनतम उदाहरण दिल्ली विश्वविद्यालय में चार साला बीए प्रोग्राम (एफवाईयूपी) को थोपना है। ऐसे में सरकार की समितियों से बाहर आकर शिक्षा पर होने वाले नवउदारवादी हमले का डट कर मुकाबला करने की जरूरत है। कई संगठन और व्यक्ति पूरे देश में यह काम कर रहे हैं। आप नेता को कारण बताओ नोटिस मिलने पर बिना जवाब दिए यूजीसी की समिति की सदस्यता से इस्तीफा देना चाहिए था और अपनी पार्टी स्तर पर शिक्षा के निजीकरण व बाजारीकरण के विरोध में जुट जाना चाहिए था।

लेकिन उन्होंने इसे मीडिया इवेंट बना दिया और सवाल उठाया कि अगर वे कांग्रेस की सदस्यता लेते तो क्या सरकार तब भी उनकी यूजीसी समिति की सदस्यता पर सवाल उठाती? हालांकि उन्हें सरकार से पूछना ही था तो यह पूछते कि समाजवादी जन परिषद (सजप) का सदस्य रहते वे समिति में रह सकते थे, तो आप पार्टी का सदस्य रहते क्यों नहीं रह सकते? समिति का सदस्य बनाए जाते समय वे जिस राजनीतिक पार्टी के सदस्य थे, उसका नाम छिपा ले जाने का यही अर्थ हो सकता है कि वे करीब दो दशक पुरानी सजप की सदस्यता को गंभीरता से नहीं लेते थे। दरअसल, सरकारी संस्थाओं की सदस्यता, सभी जानते हैं, सरकारी नजदीकियों से मिलती है। विद्वता हमेशा उसकी कसौटी नहीं होती। खुद विद्वता की कसौटी आजकल एक-दूसरे को ऊपर उठाना और नीचे गिराना हो गई है। अगर किसी विद्वान की किसी समिति की सदस्यता चली जाती है तो उसमें बहुत परेशान होने की बात नहीं है। परेशानी की बात यह है कि विभिन्न समितियों में विद्वानों की उपस्थिति के बावजूद सरकारें निजीकरण को हरी झंडी दिखा रही हैं। ऐसे में कोई सरोकारधर्मी विद्वान किसी समिति में कैसे रह सकता है?

कहा जाता है कि अपने पर रीझे रहने वाले लोग खुद माला बनाते हैं और खुद ही अपने गले में डाल लेते हैं। आप के नेता, जो पहले अलग-अलग चैनलों और सरकारों के लिए सर्वे करते थे, अपने लिए सर्वे करके जीत के दावे कर रहे हैं। राजनीतिक शालीनता की सारी सीमाएं उलांघते हुए विरोधी पार्टियों के नेताओं को बेईमान और अपने को ईमानदार प्रचारित कर रहे हैं। उन्होंने विरोधी पार्टियों के चुनाव चिन्हों को भी विरूपित किया है, जिसकी शिकायत एक पार्टी ने चुनाव आयोग से की है। इतना ही नहीं, राष्ट्रीय ध्वज तिरंगे को उन्होंने अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति का जरिया बना लिया है। किराए के कार्यर्ता तिरंगा लहराते हैं और फेंक कर चल देते हैं। दरअसल, ये आत्ममुग्ध लोग हैं। आत्ममुग्धता - 'हम सबसे अच्छे हैं' - से ग्रस्त लोगों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन बड़ा रोचक हो सकता है। आत्ममुग्ध लोग अपने होने को चमत्कार की तरह लेते हैं, और मानते हैं कि उनका किया हर पाप भी पवित्र होता है। वे अपने गुणग्राहक आप होते हैं और पतन की अतल गहराइयों में गिरने के बावजूद उदात्तता की भंगिमा बनाए रहते हैं। दुनिया की सारी दूध-मलाई मारने के बावजूद वे अपने को सारी दुनिया द्वारा सताया हुआ जताते हैं। दुनिया और भारत के साहित्य में आत्ममुग्ध (नारसिसिस्ट) नायकों की लंबी फेहरिस्त मिलती है। वास्तविकता में वे कई जटिल कारणों से मानसिक रोगी होते हैं, लेकिन भ्रम समस्त रोगों का डाक्टर होने का पालते और फैलाते हैं। आईएसी, भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन और आप में आत्मव्यामोहित 'नायकों' की फेहरिस्त देखी जा सकती है। हम परिघटना पर हम केवल इतना कहना चाहते हैं कि तानाशाही और फासीवाद का रास्ता यहीं से शुरू होता है। मीडिया की मार्फत अफवाहबाजी का जो सिलसिला इन महाशयों ने शुरू किया, नरेंद्र मोदी उसीमें से निकल कर आया है।

भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के दौरान गांधी का काफी नाम लिया गया। अन्ना हजारे को, जिन्होंने जंतर-मंतर से पहली प्रशंसा हजारों नागरिकों का राज्य-प्रायोजित नरसंहार करने वाले गुजरात के मुख्यमंत्री नरेंद्र मोदी की की, लगातार गांधीवादी कहा और लिखा जाता रहा। अरविंद केजरीवाल अपने को उन्हीं का शिष्य कहते हैं। इसीलिए 'गुजरात का 'शेर' से 'भारत माता का शेर' बने नरेंद्र मोदी के खिलाफ आज तक कुछ नहीं लिखा या बोला है। कश्मीर पर दिए गए बयान की प्रतिक्रिया में प्रशांत भूषण पर हमला अन्ना हजारे और रामदेव के भक्तों ने ही किया था। अफजल गुरु के पार्थिव शरीर को श्रीनगर से आई महिलाओं को सौंपने की मांग को लेकर प्रैस क्लब में निश्चित की गई प्रैस वार्ता नहीं होने देने वाले हुड़दंगियों में आप के कार्यकर्ता भी शामिल थे। आप में प्रतिक्रियावादी लोगों की भरमार है। आप के नेताओं को चुनाव जीतना है, तो उन्हें पुचकार कर रखना होगा।

गांधी साधन और साध्य को अलग करके नहीं देखते थे। इस पार्टी के नेता चुनाव जीतने के लिए कुछ भी करने की नीयत से परिचालित हैं। वास्तव में इस पार्टी के निर्माण और लक्ष्य दोनों में कपट समाया हुआ है। भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के दौरान राजनीति और नेताओं के प्रति गहरी घृणा का प्रचार किया गया। हालांकि नीयत पहले से ही राजनीतिक पार्टी बनाने की थी, जो अन्ना हजारे की अनिच्छा के बावजूद बना ली गई। यह भी सुना गया कि केजरीवाल रामलीला मैदान में अन्ना का अनशन खत्म करने के पक्ष में नहीं थे। क्योंकि अनशन पर अन्ना की मृत्यु हो जाने की स्थिति में केजरीवाल अन्ना की जगह लेकर राजनीति की उड़ान भर सकते थे। वे पहले ही डरे हुए थे कि बाबा रामदेव राजनीति की दौड़ में आगे न निकल जाएं। इस सारे दंद-फंद का लक्ष्य भी कपट से भरा था - नवउदारवाद की मार से बदहाल गरीब भारत की आबादी को उससे लाभान्वित होने वाले अमीर भारत के पक्ष में हांका जा सके।

आप के प्रचार की शैली कांग्रेस जैसी है। जिस तरह पूरी कांग्रेस राहुल गांधी की नेतागीरी जमाने के लिए कारिंदे की भूमिका निभाती है, आप के नेता-कार्यकर्ता केजरीवाल के कारिंदे बने हुए हैं। जिस पार्टी के शुरू में ही इस कदर व्यक्तिवाद हावी हो, सत्ता मिलने पर वह और मजबूत ही होगा। आप पार्टी में व्यक्तिवाद के चलते एक टूट हो चुकी है। पार्टी आगे चली तो और टूटें भी हो सकती हैं। व्यक्तिवाद पूंजीवादी मूल्य है। भारत की राजनीति में यह सामंतवाद के साथ मिलकर परिवारवाद, वंशवाद, क्षेत्रवाद जैसे गुल खिलता है। जैसे बड़ी पार्टियां अंधाधुंध प्रचार करके अपने नेता के नाम की पट्टी मतदाताओं की आंखों पर बांध देना चाहती हैं, वही रास्ता आप पार्टी के रणनीतिकारों ने अपनाया है। पोस्टर, बैनर, होर्डिंग के अलावा मोबाइल और नेट पर एक ही आदमी के नाम का प्रचार किया जा रहा है। वह भी सीधे मुख्यमंत्री के रूप में। आप घर-दफ्तर में बैठे हैं, किसी कार्यक्रम में शिरकत कर रहे हैं, गाड़ी चला रहे हैं, आपके मोबाइल

पर लिखित या रिकार्ड की गई आवाज में अन्ना हजारे के शिष्य अरविंद केजरीवाल का मैसेज आ जाएगा। अंधाधुंध प्रचार अंधाधुंध धन के बिना नहीं हो सकता। यानी ये 'अच्छे' और 'ईमानदार' लोग सीख दे रहे हैं कि राजनीति करनी है तो कांग्रेस और भाजपा से सीख लो! लोकतंत्र में प्रचार का यह तरीका फासिस्ट रुझान लिए है, जिसमें केवल एक नेता की छवि मतदाताओं के ऊपर दिन-रात थोपी जाती है।

कहा जाता है सावन के अंधे को सब हरा हरा-हरा नजर आता है। सत्ता के अंधे आप के नेताओं का भी यही हाल है। वे हर इंसान और घटना को चुनाव के चश्मे से देखते हैं। दुर्गाशक्ति नागपाल का निलंबन हुआ तो बिना उनसे मिले उन्हें आप से चुनाव लड़ने का प्रस्ताव कर दिया। पार्टी के पंजीकरण से पहले ही दिल्ली विधानसभा की सभी सीटों पर चुनाव लड़ने की घोषणा कर दी गई। तभी से कहीं मुसलमान उम्मीदवार तलाशा जा रहा है, कहीं दलित, कहीं जाट, कहीं पंजाबी, कहीं सिख। दान-दाता तो तलाशे जा ही रहे हैं। दिल्ली में आप से चुनाव लड़ने के लिए कैसे-कैसे लोगों को किस-किस तरह से एप्रोच किया गया है और किया जा रहा है, उसकी पूरी कहानी छप जाए तो वह एक अच्छा राजनीतिक प्रहसन होगा।

हमें एक साथी ने बताया कि प्रकाश झा की फिल्म 'सत्याग्रह' में आम आदमी पार्टी की टोपी, जिस पर 'मैं आम आदमी हूं' लिखा होता है, पहने लोग दिखाए गए हैं। यह भी पता चला कि थियेटर के बाहर आप के कार्यकर्ता टोपी लगा कर खड़े थे। हो सकता है यह दिखाने के लिए केजरीवाल और प्रकाश झा के बीच कुछ धन का लेन-देन हुआ हो। या प्रकाश झा बहुत-से भले लोगों की तरह कायल हों कि 'मैं आम आदमी हूं' की टोपी पहनने वाले लोग वाकई आम आदमी की भलाई का काम करने वाले हैं। जिस तरह से आप के नेता सब जगह टोपी का प्रदर्शन करते हैं, वह विचारणीय है। राजनीतिक पार्टी के विशेष कार्यक्रमों में टोपी लगाना समझ में आता है। हालांकि, तब भी टोपी न लगाई जाए तो उससे कुछ फर्क नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि टोपी जिस विचार का प्रतीक है, उसके प्रति आंतरिक दृढ़ता है, तो टोपी यानी दिखावे की जरूरत नहीं रह जाती। डा. लोहिया पार्टी कार्यकर्ताओं के लाल टोपी पहनने के खिलाफ थे। उनका मानना था कि क्रांति का विचार नेता-कार्यकर्ता के मन में होना चाहिए। दिखावे से शुरू होने वाली राजनीति का अंत अंततः पूर्ण पाखंड में होगा।

लाखों-करोड़ों में खेलने वाले लोग जब 'मैं आम आदमी हूं' की टोपी लगाते हैं, तो उसका पहला और सीधा अर्थ गरीबों का उपहास उड़ाना है। 'आम आदमी' की अवधारणा पर थोड़ा गंभीरता से सोचने की जरूरत है। आजादी के संघर्ष के दौर में और आजादी के बाद आम आदमी को लेकर राजनीतिक और बौद्धिक हलकों में काफी चर्चा रही है, जिसका साहित्य और कला की बहसों पर भी असर पड़ा है। साहित्य में आम आदमी की पक्षधरता के प्रगतिवादियों के अतिशय आग्रह से खीज कर एक बार हिंदी के 'व्यक्तिवादी' साहित्यकार अज्ञेय ने कहा कि 'आम आदमी आम आदमी ... आम आदमी क्या होता है?' उनका तर्क था कि साहित्यकार के लिए सभी लोग विशिष्ट होते हैं। राजनीति से लेकर साहित्य तक जब आम आदमी की जोरों पर चर्चा शुरू हुई थी, उसी वक्त आम आदमी का अर्थ भी तय हो गया था। उस अर्थ में गांधी का आखिरी आदमी कहीं नहीं था। आम आदमी की पक्षधरता और महत्ता की जो बातें हुईं, वे शुरू से ही 'मेहनत-मजदूरी' करने वाले गरीब लोगों के लिए नहीं थीं।

मध्यवर्ग ने आम आदमी की अवधारणा में अपने को ही फिट करके उसकी वकालत और मजबूती में सारे प्रयास किए हैं और आज भी वही करता है। आम आदमी मध्यवर्गीय अवधारणा है। उसका गरीब अथवा गरीबी से संबंध हो ही नहीं सकता था। क्योंकि मध्यवर्ग को अपने केंद्र में लेकर चलने वाली आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का यह वायदा रहा है कि वह किसी को भी गरीब नहीं रहने देगी। दूसरे शब्दों में, जो गरीब हैं, उन्हें दुनिया में नहीं होना चाहिए। भारत का यह 'महान' मध्यवर्ग, जो नवउदारवाद के पिछले 25 सालों में खूब मुटा गया है, आम आदमी के नाम पर अपनी स्थिति और मजबूत करना चाहता है। वह सब कुछ अपने लिए चाहता हैं, लेकिन गरीबों का नेता होने की अपनी भूमिका को छोड़ना नहीं चाहता। इस पाखंड ने भारत की गरीब और आधुनिकता में पिछड़ी मेहनतकश जनता को अपार जिल्लत और दुख दिया है। भारत का मध्यवर्ग मुख्यतः अगड़ी सवर्ण जातियों से बनता है। यही कारण है कि भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन और उससे निकली पार्टी का वर्णाधार अगड़ी सवर्ण जातियां हैं, जिनका साथ दबंग पिछड़ी जातियां देती हैं। इसी आधार पर आप के नेता युवकों का आह्वान करते हैं कि वे जातिवादी नेताओं को छोड़ कर आगे आएं और मध्यवर्ग नाम की नई जाति में शामिल हों। यहां उनकी जाति भी ऊंची होगी और वर्ग-स्वार्थ भी बराबर सधेगा।

यह देख कर काफी हैरानी होती है कि कई साथी आम आदमी पार्टी से आशाएं पाले हैं। उन्हें कांग्रेस और भाजपा के बाद आप ही नजर आती है। ऐसा भी नहीं है कि उनमें सभी 'आम आदमी' की तरह देश के लोकतांत्रिक वामपंथी आंदोलन और पार्टियों से अनभिज्ञ हों। उनमें शिक्षक और पत्रकार भी शामिल हैं। भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन, जिसे यही लोग चला रहे थे, की पूरी हवा निकल जाने के बावजूद आप पार्टी के जीतने और उससे कुछ होने की उम्मीद रखने

वालों के बारे में यही कहा जा सकता है कि ज्यादातर नागरिक समाज में राजनीतिक मानस का लोप हो गया है। यही कारण है कि कारपोरेट पूंजीवाद की पक्षधर राजनीति की जगह तेजी से बढ़ती जा रही है और उसका विरोध करने वाली पार्टियों को पैर टेकने तक की जगह मुश्किल से मिल पाती है।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं*)